भैया रामानुज प्रताप देव
बनाम
लालू महेशनुज प्रताप देव एवं अन्य
तथा विपरीत रूप से भी

1970 की दीवानी अपील संख्याएँ 209 एवं 2280
26 अगस्त, 1981

[माननीय न्यायमूर्ति श्री डी.ए. देसाई, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए.डी. कोशल एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री आर.बी. मिश्रा]

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, धारा 4 तथा 6, परिधि — क्या धारा 6 के प्रावधान ज्येष्ठाधिकार की प्रथागत नियमावली को अधिलंघित करते हैं — बिहार भूमि सुधार अधिनियम, धारा 6, की प्रयोज्यता — छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1876, धारा 12क, पूर्ण की जाने वाली शर्तें — भारतीय पंजीकरण अधिनियम, धारा 17 तथा 49, अपंजीकृत दस्तावेजों का साक्ष्यात्मक मूल्य।

भैया रुद्र प्रताप देव पलामू जिला में स्थित 'नागरुंतारी संपदा' नामक अविभाज्य संपदा के धारक थे — उक्त संपदा का उत्तराधिकार रेखीय ज्येष्ठाधिकार के प्रथागत नियम द्वारा शासित था — उक्त नियम के अनुसार ज्येष्ठ शाखा के ज्येष्ठ पुरुष सदस्य को संपदा का उत्तराधिकार प्राप्त होना था, जबकि कनिष्ठ सदस्यों को केवल भरण-पोषण अनुदान का अधिकार था, जो ज्येष्ठ शाखा की पुरुष वंश रेखा के समाप्त होने पर पुनर्ग्रहण के अधीन था — रुद्र प्रताप देव सिंह के एक छोटे भाई हरिहर प्रताप देव थे, जिनका वर्ष 1934 में अपने भाई रुद्र प्रताप देव के साथ संयुक्त अवस्था में निधन हो गया, अपने पीछे अपने पुत्र लालू महेशानुज प्रताप देव उर्फ नील बच्चा तथा एक अन्य सौतेले पुत्र को छोड़कर, जिसकी भी वर्ष 1937 में अविवाहित अवस्था में मृत्यु हो गई — भैया रुद्र प्रताप देव ने दिनांक 14 अप्रैल, 1952 को आठ ग्रामों के संबंध में भरण-पोषण का एक विलेख निष्पादित किया — ग्राम सिगसिगी के कृषि भूखण्डों के संबंध में पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ — दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही नील बच्चा के पक्ष में समाप्त हुई —

तत्पश्चात भैया रुद्र प्रताप देव ने दीवानी वाद संख्या 16 सन् 1955 इस आधार पर दायर किया कि (क) दिनांक 14 अप्रैल, 1952 के औपचारिक भरण-पोषण विलेख में दो ग्राम, अर्थात सिगसिगी एवं पटीहारी को सम्मिलित कर कपट किया गया तथा (ख) भरण-पोषण अनुदान छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12क तथा बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के अधीन शून्य हैं और इस आधार पर प्रतिवादी को कोई स्वत्व प्राप्त नहीं हुआ — उक्त वाद का प्रतिवादी द्वारा अन्य आधारों सहित प्रतिवाद किया गया कि नागरुंतारी संपदा कभी भी ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित अविभाज्य संपदा नहीं थी, बल्कि अपने उद्गम में यह एक अविरासत योग्य घटवाला जागीर थी और तत्पश्चात इसे विरासत योग्य बनाया गया तथा राजस्व देय संपदा के स्तर तक उन्नत किया गया, जिससे यह परिवार की सामान्य संयुक्त संपत्ति बन गई जो सदस्यों के मध्य विभाज्य है — किसी द्वारा कोई कपट नहीं किया गया तथा हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन के पश्चात, वादी के सह-भोजी होने के कारण वह भरण-पोषण विलेख में सम्मिलित सभी आठ ग्रामों के कब्जे में विभाजन होने तक बने रहने का अधिकारी है।

विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि भरण-पोषण विलेख द्वारा प्रतिवादी को सभी आठ ग्राम प्रदान किए गए थे, किन्तु उसे उक्त भूमि में कोई हित प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि वह विलेख छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12क तथा छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल था — यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि नागरुंतारी संपदा एक अविभाज्य संपदा थी जो ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित थी, किन्तु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन के पश्चात यह स्थिति समाप्त हो गई तथा चूंकि भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु वाद के लंबितकालीन होने के दौरान तथा उक्त अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात हुई, अतः उत्तराधिकार उत्तरजीविता के सिद्धांत द्वारा शासित होगा और इस प्रकार वादी के विधिक प्रतिनिधि तथा प्रतिवादी दोनों ही उत्तराधिकार प्राप्त करेंगे — प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि (क)

चूंकि भरण-पोषण अनुदान आयुक्त की स्वीकृति से नहीं किया गया था, अतः वह छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12 क के अधीन शून्य था; तथा (ख) क्योंकि पूर्व स्वामी का बकाश्त भूमि के संबंध में कब्जा बिहार राज्य के अधीन रैयत का हो गया था और रैयती अधिकार पंजीकृत दस्तावेज के बिना अंतरणीय नहीं था, अतः प्रतिवादी का कब्जा एक शून्य करार के आधार पर था; तथा (ग) भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु के पश्चात हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 लागू हो गई और अपीलकर्ताओं तथा प्रतिवादी दोनों सह-भागी के रूप में उत्तराधिकार प्राप्त करने के अधिकारी थे।

वादियों द्वारा दायर द्वितीय अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई, इस प्रकार कि उच्च न्यायालय ने यह पाया कि रुद्र प्रताप देव के उत्तराधिकारी वाद संपत्ति के कब्जे के लिए एकमात्र प्रतिवादी के साथ संयुक्त रूप से न्यायादेश प्राप्त करने के अधिकारी हैं तथा अपने हिस्से, अर्थात एक-आधा, के लिए मध्यवर्ती लाभ के भी अधिकारी हैं, इसके अतिरिक्त उन संपूर्ण मध्यवर्ती लाभों के भी, जिनके रुद्र प्रताप देव अपने जीवनकाल में अधिकारी थे — दोनों पक्षकार उच्च न्यायालय के निर्णय एवं न्यायादेश के विरुद्ध, उस सीमा तक जिसमें वह उनके प्रतिकूल था, इस न्यायालय के समक्ष अपील में उपस्थित हुए हैं।

वादी की अपील को निरस्त करते हुए तथा प्रतिवादी की अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने यह विनिश्चित किया कि:

1. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 4 का साधारण अवलोकन यह दर्शाता है कि हिंदू विधि के अंग के रूप में प्रचलित कोई भी प्रथा या प्रचलन, अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात उन विषयों के संबंध में प्रभावहीन हो जाएगा जिनके लिए अधिनियम में प्रावधान किया गया है — यदि नागरुंतारी संपदा में रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम एक प्रथागत नियम है, तो वह निश्चित रूप से प्रभावहीन हो जाएगा, भले ही वह हिंदू विधि का अंग रहा हो — (426 डी-ई)।

2. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 5(ii) ऐसे संपदा की रक्षा

करती है जो किसी संविदा या करार की शर्तों के अनुसार अथवा किसी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एकल उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होती है, क्योंकि ऐसी संपदा पर हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू नहीं होता — धारा 5(ii) उक्त अधिनियम की धारा 4 का एक अपवाद है — (426 जी-एच)।

प्रस्तुत वाद में रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम कोई वैधानिक नियम नहीं, बल्कि एक प्रथागत नियम है, अतः यह हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5(ii) द्वारा संरक्षित नहीं है — (426 एच, 427 ए)।

3. बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 6 केवल यह उपबंधित करती है कि भूमि को राज्य द्वारा ऐसे मध्यस्थ के साथ निहित रूप से बसाया हुआ माना जाएगा और वह उस पर कब्जा बनाए रखने तथा राज्य के अधीन रैयत के रूप में उसे धारण करने का अधिकारी होगा, तथा ऐसी भूमि के संबंध में उसे उपयुक्त एवं न्यायसंगत किराया के भुगतान के अधीन अधिभोग अधिकार प्राप्त होंगे — किन्तु यदि मध्यस्थ किसी प्रतिनिधिक क्षमता में अन्य सहभाजकों की ओर से कब्जे में था, तो एक आवश्यक परिणाम के रूप में वह भूमि उन सभी व्यक्तियों के साथ बसाई हुई मानी जाएगी जिनकी ओर से वह विशेष मध्यस्थ खास कब्जे में था — परिणामस्वरूप, यदि भैया रुद्र प्रताप देव का कब्जा अन्य सहभाजकों की ओर से था, तो भूमि उन सभी सहभाजकों के साथ बसाई हुई मानी जाएगी और वे सभी रैयत बन जाएंगे — यहाँ परिवार की संयुक्त स्थिति बनी रही और इसलिए भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु के पश्चात उनका हित अन्य सहभाजकों में भी अंतरणित हो गया — (429 सी-एफ)।

4.1. स्वीकार्यतः प्रतिवादी एक संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य था — अविभाज्य संपदा में भी वह भरण-पोषण का अधिकारी था तथा विवादित भूमि निस्संदेह अविभाज्य संपदा के धारकों द्वारा प्रतिवादी को प्रदान की गई थी — अतः इस कब्जे को अतिक्रमणकर्ता का कब्जा नहीं माना जा सकता — (431 ए)।

4.2. छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1876 की धारा 12 क तभी लागू होगी जब धारा 12 की प्रथम अथवा तृतीय उपधारा में वर्णित परिस्थितियों के अंतर्गत संपत्ति का कब्जा एवं उपभोग पुनः स्थापित किया गया हो — यह सिद्ध करने का भार वादी पर था कि धारा 12 में निहित शर्तें पूर्ण हुई थीं, जिसे वह सिद्ध करने में असफल रहा — (430 डी-ई)।

4.3. भरण-पोषण विलेख को कब्जे के स्वरूप का निर्धारण करने के लिए सहायक उद्देश्य हेतु देखा जा सकता है — भरण-पोषण विलेख भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के अर्थ में ऐसा दस्तावेज है जिसके लिए पंजीकरण आवश्यक है, और चूंकि उक्त दस्तावेज का पंजीकरण नहीं हुआ, अतः इसे ऐसी संपत्ति को प्रभावित करने वाले किसी लेन-देन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता — तथापि, धारा 49 का प्रावधान यह अनुमति देता है कि ऐसे अपंजीकृत दस्तावेज का उपयोग किसी ऐसे सहायक लेन-देन के साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है, जिसके लिए पंजीकृत लिखत द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया जाना अपेक्षित नहीं है — (430 एफ-एच)।

5 (क) अविभाज्य संपदा का धारक, परिवार के अविभाजित होने के बावजूद, संपदा का अंतरण *जीवित अवस्था में उपहार के रूप में* अथवा वसीयत द्वारा कर सकता है, और इस अधिकार पर एकमात्र सीमा ऐसी पारिवारिक प्रथा से उत्पन्न होगी जो इसके विपरीत हो या फिर ऐसी भू-अधिकार की शर्त से, जिसका वही प्रभाव हो — अतः यह कहना सही नहीं है कि अविभाज्य संपदा केवल धारक के उत्तराधिकारियों को ही प्राप्त होगी और अन्य परिवार के सदस्यों को उत्तरजीविता के आधार पर प्राप्त नहीं होगी — (431 बी-सी, 435 सी-डी)।

5 (ख) यह सुव्यवस्थित रूप से स्थापित माना जाना चाहिए कि जो संपदा प्रथा के कारण अविभाज्य है, उसे उस संपदा के धारक की पृथक या विशिष्ट संपत्ति नहीं कहा जा सकता — यदि धारक को वह संपदा पैतृक संपदा के रूप में प्राप्त हुई है और उसने

ज्येष्ठाधिकार के आधार पर उत्तराधिकार प्राप्त किया है, तो वह अविभाजित परिवार की संयुक्त संपदा का ही एक भाग होगी — (433 डी-ई)।

साधारण संयुक्त परिवार की संपत्ति के मामले में परिवार के सदस्यों को चार अधिकार प्राप्त होते हैं: (1) विभाजन का अधिकार, (2) परिवार के मुखिया द्वारा आवश्यकता के अतिरिक्त संपत्ति के अंतरण को रोकने का अधिकार, (3) भरण-पोषण का अधिकार, तथा (4) उत्तरजीविता का अधिकार — यह स्पष्ट है कि संपत्ति के अविभाज्य स्वरूप के कारण प्रथम तीन अधिकार अस्तित्व में नहीं रह सकते — तथापि, चौथा अधिकार अर्थात उत्तरजीविता का अधिकार बना रहता है और इसी अधिकार के संदर्भ में यह संपत्ति, यद्यपि अविभाज्य है, विधि की दृष्टि में संयुक्त परिवार की संपत्ति मानी जाती है — अविभाजित परिवार के वे सदस्य जो ऐसी अविभाज्य संपदा के स्वामी हैं, उनके द्वारा दावा किया जाने वाला *उत्तरजीविता का अधिकार* मात्र *उत्तराधिकार की अपेक्षा* से भिन्न है — अपेक्षित उत्तराधिकार के विपरीत, उत्तरजीविता का अधिकार त्यागा या समर्पित किया जा सकता है — (433 जी-एच, 434 ए-बी)।

राजा वेलुगोटी कुमारा कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य बनाम राजा वेलुगोटी सर्वज्ञ कुमारा कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य [1970] 3 एस.सी.आर. 88; *राजा राम राव बनाम पिट्टापुर के राजा,* [1918] एल.आर. 45 आई.ए. 8; *हरगोविंद सिंह बनाम एटा के समाहर्ता,* ए.आई.आर. 1937 इलाहाबाद 377 तथा *राजा राव वेंकटा सूर्य महिपति राम कृष्ण राव बहादुर बनाम कोर्ट ऑफ वाड्र्स,* [1899] एल.आर. 26 आई.ए. 83 — विचारित एवं विभेदित।

मिर्जा राजा श्री पुषवाठी विजयराम गजपति राज मन्ने सुल्तान बहादुर एवं अन्य बनाम श्री पुषवाठी विश्वेश्वर गजपति राज एवं अन्य [1964] 2 एस.सी.आर. 403 — अनुप्रयुक्त।

चिन्नाथायल उर्फ वीरलक्ष्मी बनाम कुलसेकर पांडिया नायकर एवं अन्य [1952] एस.सी.आर. 241 — संदर्भित।

6. प्रस्तुत वाद में अभिलेख पर उपलब्ध प्रबल साक्ष्य स्पष्ट रूप से यह सिद्ध करते हैं कि (क) विवादित संपदा मूल वादी की 1957 में मृत्यु तक एक अविभाज्य संपदा थी; तथा (ख) किसी सह-भागी के लिए संयुक्त संपत्ति के कब्जे में बने रहना अनुमेय है और ऐसी स्थिति में वादी के लिए उपयुक्त उपाय विभाजन हेतु वाद दायर करना है, जिसमें पक्षकारों के साम्य का समायोजन किया जा सके, न कि किसी एक ग्राम के भूखण्डों के कब्जे तथा मध्यवर्ती लाभ के लिए वाद दायर करना — (436 बी, 437 बी-डी)।

बंबई के समाहर्ता बनाम बंबई नगर निगम एवं अन्य, ए.आई.आर. 1951 सर्वोच्च न्यायालय 469 — अनुप्रयोज्य नहीं माना गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1970 की दीवानी अपील संख्याएँ 209 एवं 2280

दीवानी अपील सं. 209/70 प्रमाणपत्र से उत्पन्न तथा दीवानी अपील सं. 2280/70 विशेष अनुमति से उत्पन्न, जो पटना उच्च न्यायालय द्वारा अपीलीय न्यायादेश से अपील सं. 1055 सन् 1962 में पारित दिनांक 28 फरवरी, 1968 के सामान्य निर्णय एवं न्यायादेश से संबंधित है।

एस. सी. मिश्रा एवं यू. पी. सिंह, दीवानी अपील सं. 209/70 में अपीलकर्ता की ओर से तथा दीवानी अपील सं. 2280/70 में उत्तरदाता/ओं की ओर से।

के. के. सिन्हा, एस. के. सिन्हा एवं एम. एल. छिब्बर, दीवानी अपील सं. 2280/70 में अपीलकर्ता की ओर से तथा दीवानी अपील सं. 209 सन् 1970 में उत्तरदाता/ओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **माननीय न्यायमूर्ति श्री मिश्रा** द्वारा प्रदान किया गया।

ये दोनों संबद्ध अपीलें पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28 फरवरी, 1968 के एक समान निर्णय के विरुद्ध निर्देशित हैं, जिनमें से पहली अपील प्रमाणपत्र के आधार पर तथा दूसरी विशेष अनुमति के आधार पर दायर की गई है।

भैया रुद्र प्रताप देव पलामू जिले में स्थित 'नागरुंतारी संपदा' नामक एक अविभाज्य संपदा के धारक थे — उक्त संपदा का उत्तराधिकार रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित था — उक्त नियम के अनुसार ज्येष्ठ शाखा के ज्येष्ठ पुरुष सदस्य को संपदा का उत्तराधिकार प्राप्त होना था, जबकि परिवार के कनिष्ठ सदस्यों को केवल भरण-पोषण अनुदान का अधिकार था, जो ज्येष्ठ शाखा की पुरुष वंश रेखा में उत्तराधिकारी के समाप्त होने पर पुनर्ग्रहण के अधीन था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त संपदा को भैया रुद्र प्रताप देव के आवेदन पर दिनांक 17 मार्च, 1932 की अधिसूचना के अनुसार, जो बिहार राजपत्र दिनांक 23 मार्च, 1932 में प्रकाशित हुई, छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1876 के अधीन संरक्षण प्रदान किया गया था और ऋण के परिसमापन के पश्चात अक्टूबर, 1945 में इसे उक्त अधिनियम के प्रचालन से मुक्त कर दिया गया। तत्पश्चात, दिनांक 5 नवम्बर, 1951 की अधिसूचना के अनुसरण में बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के अधीन उक्त संपदा बिहार राज्य में निहित हो गई। हरिहर प्रताप देव, जो भैया रुद्र प्रताप देव के छोटे भाई थे, वर्ष 1934 में अपने भाई के साथ संयुक्त अवस्था में निधन को प्राप्त हुए, अपने पीछे अपने पुत्र लालू महेशानुज प्रताप देव उर्फ नील बच्चा तथा एक अन्य सौतेले पुत्र को छोड़कर, जिसकी भी वर्ष 1937 में अविवाहित अवस्था में मृत्यु हो गई। लालू महेशानुज प्रताप देव ने वर्ष 1950 में भैया रुद्र प्रताप देव से भरण-पोषण हेतु भूमि की मांग की। भैया रुद्र प्रताप देव ने दिनांक 14 अप्रैल, 1952 को लालू महेशानुज प्रताप देव के पक्ष में आठ ग्रामों के संबंध में भरण-पोषण का विलेख निष्पादित किया। तथापि, ग्राम सिगसिगी के भूखण्डों के संबंध में पक्षकारों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही में परिणत हुआ। उक्त कार्यवाही बाद में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में परिवर्तित कर दी गई, जो दिनांक 4 जुलाई, 1955 को लालू महेशानुज प्रताप देव के पक्ष में समाप्त हुई। उक्त आदेश से व्यथित होकर भैया रुद्र प्रताप देव ने एक वाद दायर

किया, जिससे वर्तमान अपीलें उत्पन्न हुई हैं और जिसे बाद में वाद संख्या 16 सन् 1955 के रूप में अंकित किया गया, जो लालू महेशानुज प्रताप देव उर्फ 'नील बच्चा' के विरुद्ध ग्राम सिगसिगी के कृषि भूखण्डों तथा जिला पलामू के बिसरामपुर में पुलिस अभिरक्षा में रखे गए अन्न के संबंध में दायर किया गया।

वादी का वाद इस प्रकार है: संपदा के बिहार राज्य में निहित हो जाने के पश्चात प्रतिवादी ने वादी के समक्ष यह अनुरोध किया कि वादी उसे भोजपुर, जौंगीपुर, चितरी, रोबिला, भंडार तथा खुंद्रा ग्राम प्रदान करे, किन्तु वादी ने ऐसा करने से यह कहते हुए इंकार कर दिया कि छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12क तथा बिहार भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान इसके मार्ग में बाधा हैं। प्रतिवादी ने तथापि विनती की और अवसर लेकर अपना भाग्य आजमाना चाहा। प्रतिवादी के अनुरोध पर वादी ने बिहार राज्य की स्वीकृति के अधीन केवल छह ग्राम, अर्थात भोजपुर, जौंगीपुर, चितरी, रोहिला, भंडार तथा खुंद्रा, उसे प्रदान करने की अनुमति दी। सिगसिगी तथा पटीहारी ग्रामों के संबंध में न तो कोई प्रस्ताव था और न ही वादी ने इन दो ग्रामों को प्रतिवादी को देने के लिए कभी सहमति दी थी। दिनांक 14 अप्रैल, 1952 को केवल इन छह ग्रामों के संबंध में, प्राधिकारियों की स्वीकृति के अधीन, भरण-पोषण का एक औपचारिक, अप्रमुद्रित एवं अपंजीकृत विलेख अवश्य तैयार किया गया। तथापि, प्रतिवादी ने वादी के कर्मचारियों तथा भूतपूर्व कर्मचारियों के साथ मिलीभगत कर, वादी की जानकारी एवं सूचना के बिना, वादी के हस्ताक्षर का उपयोग करते हुए और मिथ्या साक्ष्य तैयार कर यह दर्शाने का प्रयास किया कि सिगसिगी तथा पटीहारी ग्रामों को भी भरण-पोषण अनुदान में सम्मिलित किया गया था, तथा टंकक एवं अन्य कुटिल व्यक्तियों के साथ मिलीभगत कर दिनांक 14 अप्रैल, 1952 के औपचारिक विलेख में इन दोनों ग्रामों को सम्मिलित कर वादी के साथ कपट किया।

जब वादी को प्रतिवादी द्वारा किए गए कपट एवं कूटरचना की जानकारी हुई, तब उसने प्राधिकारियों के समक्ष आपत्ति प्रस्तुत की और प्राधिकारियों ने भरण-पोषण के दावे

को स्वीकार करने से इंकार कर दिया तथा उक्त ग्रामों को वादी की क्षतिपूर्ति सूची में सम्मिलित करने का आदेश दिया और सभी सिरजोत भूमि का किराया वादी के पक्ष में निर्धारित किया गया। इस प्रकार, छह ग्रामों के संबंध में भी कोई भरण-पोषण अनुदान शेष नहीं रहा और यदि कोई अनुदान था भी, तो वह छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12क तथा बिहार भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के अधीन शून्य है। यहाँ तक कि तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि दिनांक 14 अप्रैल, 1952 के विलेख में सिगसिगी तथा पटीहारी ग्रामों को सम्मिलित किया गया था, तब भी ऐसा अंतरण *प्रारंभ से ही शून्य* है और उसके आधार पर प्रतिवादी को कोई स्वत्व प्राप्त नहीं हुआ।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही के समय वादी द्वारा उगाई गई धान की फसल खड़ी थी, और वादी के आवेदन पर उसे पुलिस द्वारा कटवाया गया। तत्पश्चात की खेती भी बिसरामपुर पुलिस के माध्यम से कराई गई, और वादी पुलिस अभिरक्षा में रखे गए समस्त अन्न का अधिकारी है।

इन आरोपों के आधार पर वादी ने यह घोषणा प्राप्त करने की प्रार्थना की कि अनुसूची क में वर्णित विवादित भूमि, जो ग्राम सिगसिगी में स्थित है, वादी की खासजोत भूमि है, कि प्रतिवादी का उससे कोई संबंध नहीं है, और यह कि वादी अनुसूची ख में वर्णित अन्न अथवा उसके मूल्य का अधिकारी है। वादी ने विवादित भूखण्डों के कब्जे तथा अन्न अथवा उसके मूल्य के लिए भी राहत का दावा किया। इसके अतिरिक्त, मध्यवर्ती लाभ के लिए, जिसका निर्धारण बाद की कार्यवाही में किया जाना था, भी राहत की प्रार्थना की गई।

भैया रुद्र प्रताप देव, जो वादी थे, वाद के लंबितकालीन रहने के दौरान निधन को प्राप्त हुए, और उनके दो पुत्र तथा चार विधवाएँ उनके स्थान पर प्रतिस्थापित हो गए। उनके ज्येष्ठ पुत्र भैया रामानुज प्रताप देव ने अपने दिवंगत पिता के स्थान पर प्रतिस्थापन हेतु विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, यह आरोप करते हुए कि नागरुंतारी संपदा एक अविभाज्य संपदा थी जो रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित

थी, जिसके अंतर्गत केवल ज्येष्ठ पुत्र ही अपने पिता का उत्तराधिकारी होने का अधिकारी है। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। तत्पश्चात भैया रुद्र प्रताप देव के दूसरे पुत्र तथा उनकी विधवाओं ने भी प्रतिस्थापन हेतु आवेदन प्रस्तुत किया। अधीनस्थ न्यायाधीश ने इन सभी व्यक्तियों को अस्थायी रूप से वादी के रूप में पक्षकार बनाया तथा यह निर्देश दिया कि एक मुद्दा निर्धारित किया जाए कि इनमें से कौन व्यक्ति या कौन-कौन इस वाद के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले लाभ के अधिकारी होंगे, यदि अंततः न्यायालय वाद को प्रतिवादी के विरुद्ध विनिश्चित करता है। वाद का संचालन दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 11 के प्रावधानों के अधीन वादी संख्या 1 को सौंपा गया।

उक्त वाद का प्रतिवादी द्वारा अन्य आधारों सहित निम्नलिखित आधारों पर प्रतिवाद किया गया: नागरुंतारी संपदा कभी भी रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित अविभाज्य संपदा नहीं थी, बल्कि अपने उद्गम में यह एक अविरासत योग्य घटवाला जागीर थी, जिसे बाद में विरासत योग्य बनाया गया तथा राजस्व देय संपदा के स्तर तक उन्नत किया गया और इस प्रकार यह परिवार की सामान्य संयुक्त संपत्ति बन गई, जो सदस्यों के मध्य विभाज्य है। उसके पिता का निधन वर्ष 1934 के आसपास भैया रुद्र प्रताप देव के साथ संयुक्त अवस्था में हुआ, उस समय वह केवल चार वर्ष का था और अपने चाचा के संरक्षण में रह रहा था। उसके चाचा भैया रुद्र प्रताप देव द्वारा किए गए प्रचार के कारण उसके मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी गई कि नागरुंतारी संपदा एक अविभाज्य संपदा है, और इसी गलत धारणा के अधीन उसने वर्ष 1950 में अपने चाचा के विरुद्ध एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें नागरुंतारी संपदा से ग्राम सिगसिगी सहित 22 ग्रामों के लिए भरण-पोषण अनुदान तथा अपने दादा की स्व-अर्जित संपत्ति के विभाजन का दावा किया। तथापि, उक्त आवेदन निरस्त कर दिया गया। नागरुंतारी संपदा बाद में बिहार भूमि सुधार अधिनियम के अधीन बिहार राज्य में निहित हो गई। इसके पश्चात भैया रुद्र प्रताप देव ने अपनी स्वेच्छा से अपने पक्ष में आठ ग्रामों, जिनमें सिगसिगी भी सम्मिलित था, के संबंध में एक भरण-पोषण

विलेख निष्पादित किया, उसे अपने घर पर टंकित कराया और उसे इस निर्देश के साथ भेजा कि वह उक्त आठ ग्रामों का कब्जा ग्रहण करे, और तदनुसार उसने उन ग्रामों का कब्जा ग्रहण कर लिया। प्रतिवादी ने इस बात का खंडन किया कि उसने कपटपूर्वक सिगसिगी तथा पटीहारी ग्रामों को भरण-पोषण विलेख में सम्मिलित कराया था या यह कि उक्त विलेख अवैध था। प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वह वादी का सह-भागी है और भरण-पोषण विलेख में सम्मिलित सभी आठ ग्रामों के कब्जे में विभाजन होने तक बने रहने का अधिकारी है।

अधीनस्थ न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि भरण-पोषण विलेख के द्वारा भैया रुद्र प्रताप देव ने वास्तव में सिगसिगी ग्राम सहित आठ ग्राम प्रतिवादी को भरण-पोषण के रूप में प्रदान किए थे, किन्तु प्रतिवादी ने उक्त भूमि में भरण-पोषण विलेख के आधार पर कोई हित अर्जित नहीं किया, क्योंकि वह छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम की धारा 12 क तथा छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि नागरुंतारी संपदा एक अविभाज्य संपदा थी, जो रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित थी, किन्तु जून 1956 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन के पश्चात यह स्थिति समाप्त हो गई, और चूंकि भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु उक्त अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात हुई, अतः संपदा का उत्तराधिकार हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के अनुसार उत्तरजीविता के सिद्धांत द्वारा शासित होगा। इस प्रकार वादी तथा प्रतिवादी दोनों ही उत्तराधिकार प्राप्त करेंगे। परिणामस्वरूप प्रतिवादी सह-स्वामी के रूप में उक्त संपत्ति के कब्जे में बने रहने का अधिकारी है और वादी विभाजन वाद में निर्णय होने तक विशिष्ट खास कब्जे का दावा नहीं कर सकते। इन निष्कर्षों के आधार पर वाद को निरस्त कर दिया गया।

उक्त निर्णय से व्यथित होकर मृत वादी भैया रुद्र प्रताप देव के उत्तराधिकारी एवं विधिक प्रतिनिधियों ने अपील दायर की। अपील में जिला न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों की पुष्टि की। तथापि, उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि छोटानागपुर

भारग्रस्त संपदा अधिनियम के प्रबंधन से संपदा के मुक्त होने के पश्चात रुद्र प्रताप देव द्वारा किया गया भरण-पोषण अनुदान उक्त अधिनियम की धारा 12 क के अधीन शून्य था, क्योंकि भरण-पोषण अनुदान आयुक्त की स्वीकृति से नहीं किया गया था, तथा इस कारण से भी कि बकाश्त भूमि के संबंध में पूर्व स्वामी का कब्जा बिहार राज्य के अधीन रैयत का हो गया था और रैयती अधिकार पंजीकृत दस्तावेज के बिना अंतरणीय नहीं था। इस प्रकार प्रतिवादी का कब्जा एक शून्य दस्तावेज के आधार पर था। विद्वान न्यायाधीश ने आगे यह भी अभिनिर्धारित किया कि भरण-पोषण का दस्तावेज अपंजीकृत होने के कारण साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, किन्तु इसे कब्जे के स्वरूप की व्याख्या हेतु सहायक उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा सकता है; तथा यह कि प्रतिवादी, परिवार का अवयस्क सदस्य होने के कारण, संपदा के धारक द्वारा उसे उक्त संपत्ति के कब्जे में रखा गया था और उसका कब्जा भरण-पोषण धारक के रूप में था, न कि अतिक्रमणकर्ता के रूप में, अतः उसे बेदखल नहीं किया जा सकता। नागरुंतारी संपदा को एक अविभाज्य संपदा माना गया, जिसमें उत्तराधिकार रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित था। किन्तु भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु के पश्चात हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 लागू हो गई और संपत्ति का अवतरण अब रेखीय ज्येष्ठाधिकार के नियम द्वारा शासित न होकर हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन प्रदत्त सामान्य उत्तराधिकार के नियम द्वारा शासित होगा। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि रुद्र प्रताप देव प्रतिवादी के साथ संयुक्त अवस्था में निधन को प्राप्त हुए थे और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात नागरुंतारी संपदा पक्षकारों की सामान्य संयुक्त परिवार संपत्ति बन गई तथा प्रतिवादी का कब्जा सह-भागी के रूप में था। इन निष्कर्षों के आधार पर जिला न्यायाधीश द्वारा वादियों की अपील निरस्त कर दी गई।

अविचलित रहते हुए, वादियों ने उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील दायर की, जिसे आंशिक रूप से स्वीकार किया गया, इस प्रकार कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रुद्र प्रताप के उत्तराधिकारी वाद संपत्ति के कब्जे के लिए एकमात्र

प्रतिवादी के साथ संयुक्त रूप से न्यायादेश प्राप्त करने के अधिकारी हैं, तथा अपने हिस्से, अर्थात एक-आधा, के लिए मध्यवर्ती लाभ के भी अधिकारी हैं, इसके अतिरिक्त उन संपूर्ण मध्यवर्ती लाभों के भी, जिनके रुद्र प्रताप अपने जीवनकाल में अधिकारी थे। दोनों पक्षकार उच्च न्यायालय के निर्णय एवं न्यायादेश के विरुद्ध, उस सीमा तक जिसमें वह उनके प्रतिकूल था, इस न्यायालय के समक्ष अपील में उपस्थित हुए हैं।

प्रथम, हम सन् 1970 की अपील संख्या 209, जो मृत वादी के उत्तराधिकारी एवं विधिक प्रतिनिधि भैया रामानुज प्रताप देव द्वारा दायर की गई है, पर विचार करते हैं।

श्री एस. सी. मिश्रा, जिन्हें श्री यू. पी. सिंह द्वारा सहायताप्राप्त थी, ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए। उनका प्रथम तर्क यह है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात भी रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम विद्यमान रहा। इस तर्क का सम्यक् परीक्षण करने के लिए अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का परीक्षण आवश्यक होगा। अधिनियम की धारा 4(1)(क) इस प्रकार उपबंधित करती है:

> "4.(1) इस अधिनियम में अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित होने के अतिरिक्त—
>
> (क) हिंदू विधि का कोई भी पाठ, नियम या उसकी कोई व्याख्या अथवा उस विधि के भाग के रूप में प्रचलित कोई भी प्रथा या प्रचलन, जो इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व प्रभावी था, इस अधिनियम में जिन विषयों के लिए प्रावधान किया गया है, उन विषयों के संबंध में प्रभावहीन हो जाएगा।

अधिनियम की धारा 6 इस प्रकार उपबंधित करती है:

> "6. जब कोई पुरुष हिंदू इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात मृत्यु को प्राप्त होता है और अपनी मृत्यु के समय मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति में हित रखता है, तो उस संपत्ति में उसका हित सहभोजिता के जीवित सदस्यों पर उत्तरजीविता के आधार पर हस्तांतरित होगा, न कि इस अधिनियम के

अनुसार:

परंतु यह उपबंधित है कि यदि मृतक अपने पश्चात अनुसूची की श्रेणी । में निर्दिष्ट किसी महिला संबंधी को, या उसी श्रेणी में निर्दिष्ट ऐसे पुरुष संबंधी को, जो उस महिला संबंधी के माध्यम से दावा करता है, जीवित छोड़ गया हो, तो मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति में मृतक का हित, यथास्थिति, इस अधिनियम के अधीन वसीयत द्वारा अथवा अवसीयत उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरित होगा, न कि उत्तरजीविता के आधार पर।"

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 4 का साधारण अवलोकन यह दर्शाता है कि हिंदू विधि के भाग के रूप में प्रचलित कोई भी प्रथा या प्रचलन, अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात उन विषयों के संबंध में प्रभावहीन हो जाएगा जिनके लिए अधिनियम में प्रावधान किया गया है। यदि नागरुंतारी संपदा में रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम एक प्रथागत नियम है, तो वह निश्चित रूप से प्रभावहीन हो जाएगा, भले ही वह हिंदू विधि का अंग रहा हो।

इस स्थिति का सामना करते हुए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5(ii) का अवलंबन किया। वर्तमान विचार के लिए जितना प्रासंगिक है, वह इस प्रकार उपबंधित है:

"धारा 5 : यह अधिनियम लागू नहीं होगा:–

(i) ...

(ii) ऐसी किसी संपदा पर, जो किसी संविदा या करार की शर्तों के अनुसार किसी एकल उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होती है ... अथवा इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व प्रचलित किसी विधि के अधीन।"

यह धारा ऐसी संपदा की रक्षा करती है जो किसी संविदा या करार की शर्तों के अनुसार अथवा किसी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एकल उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होती है, क्योंकि ऐसी संपदा पर हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू नहीं होता। यह धारा

उपर्युक्त उल्लिखित अधिनियम की धारा 4 का एक अपवाद है।

श्री मिश्रा द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रस्तुत वाद में रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम एक वैधानिक नियम है, न कि प्रथागत नियम, और अतः यह हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5(ii) द्वारा संरक्षित है। अपने इस तर्क के समर्थन में उन्होंने बंगाल विनियम 10 सन् 1800 पर अवलंबित किया। बंगाल विनियम 10 सन् 1800 इस प्रकार उपबंधित करता है:

(i) विनियम 11 सन् 1798 द्वारा यह घोषित किया गया है कि बिना वसीयत के मृत्यु को प्राप्त होने वाले भूमि स्वामियों की संपदाएँ मृतक के उत्तराधिकारियों के बीच हिंदू या मोहमडन विधि के अनुसार विभाजित की जाएँगी।

तथापि, मिदनापुर तथा अन्य जिलों के जंगल महलों में एक ऐसी प्रथा प्रचलित पाई गई, जिसके अनुसार भूमिधर संपदाओं का उत्तराधिकार बिना संपत्ति के विभाजन के सदैव एक ही उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होता है, अतः गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल ने निम्नलिखित नियम को बंगाल, बिहार और उड़ीसा प्रांतों में इसके प्रकाशन की तिथि से लागू करने का विधान किया।

विनियम 11 सन् 1798 (2) को ऐसा नहीं माना जाएगा कि वह मिदनापुर के जंगल महलों तथा अन्य जिलों में प्रचलित किसी स्थापित प्रथा को निरस्त या प्रभावित करता है, जिसके अनुसार ऐसी भूमिधर संपदाओं का उत्तराधिकार, जिनके स्वामी बिना वसीयत के मृत्यु को प्राप्त होते हैं, अब तक एक ही उत्तराधिकारी को, मृतक के अन्य उत्तराधिकारियों को अपवर्जित करते हुए, हस्तांतरित माना जाता रहा है।

उक्त महलों में देश की स्थानीय प्रथा पूर्ववत् पूर्ण प्रभाव में बनी रहेगी, और न्यायालय उन महलों में स्थित भूमिधर संपत्ति के उत्तराधिकार से

संबंधित अपने समक्ष प्रस्तुत सभी दावों के निर्णय में उसी प्रथा द्वारा मार्गदर्शित होंगे।

इस विनियम से निम्नलिखित प्रतिपाद्य सिद्धांत स्पष्ट रूप से निष्पन्न होते हैं:

(क) यह विनियम एक पूर्ववर्ती विनियम (विनियम संख्या 11 सन् 1798) का संज्ञान लेता है, जिसके अनुसार बिना वसीयत के मृत्यु को प्राप्त होने वाले भूमि स्वामी की संपदा उसके उत्तराधिकारियों के बीच उसके व्यक्तिगत विधि के अनुसार विभाजित की जानी थी।

(ख) यह भी अभिलक्षित करता है कि कुछ क्षेत्रों में ऐसी प्रथा प्रचलित पाई गई थी, जिसके अनुसार भूमि का अवतरण एक ही उत्तराधिकारी पर होता था।

(ग) इसके पश्चात यह उपबंधित किया गया है कि ऐसी प्रथा को विनियम संख्या 11 सन् 1798 द्वारा निरस्त या अप्रभावी नहीं माना जाएगा, और उक्त क्षेत्रों में ऐसी प्रथा ही निर्णय का नियम होगी।

इस विनियम का यह विश्लेषण इस आगे के निष्कर्ष तक ले जाता है कि इसने अपने बल पर यह घोषित नहीं किया कि कोई भी संपदा एकल उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होगी। इसने केवल उस प्रथा को जीवित रखा जो ज्येष्ठाधिकार के नियम को मान्यता देती थी, जिससे संपदा का अविभाज्य होना सुनिश्चित होता था। इस प्रकार प्रथा के नियम को उसी रूप में मान्यता दी गई और विनियम की शर्तों के आधार पर किसी भी संपदा को एकल उत्तराधिकारी को हस्तांतरित होने योग्य नहीं बनाया गया। इस दृष्टिकोण से, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5 के उपखंड (ii) के अंतर्गत ऐसी प्रथा सम्मिलित नहीं होती।

वैकल्पिक रूप से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यदि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात भी रेखीय ज्येष्ठाधिकार का नियम अस्तित्व में नहीं रहा, तो भी वाद भूमि को बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 6 के अधीन वादी के साथ निहित

माना जाएगा और वादी वाद भूमि का एकमात्र स्वामी बन गया। बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 6, जहाँ तक इस वाद के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार उपबंधित करती है:

6. (1) निहित होने की तिथि से, कृषि या बागवानी प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त सभी भूमि, जो ऐसी निहित तिथि पर किसी मध्यस्थ के 'खास' कब्जे में थीं, जिनमें सम्मिलित हैं:–

(क) (i) स्वामी की निजी भूमि, जो वर्षों की अवधि के लिए पट्टे पर दी गई हो या वर्ष से वर्ष के पट्टे पर दी गई हो, जिसका उल्लेख बिहार काश्तकारी अधिनियम, 1885 (1885 का 8) की धारा 116 में किया गया है,

(ii) मालिक की विशेषाधिकार प्राप्त भूमि, जो एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए पंजीकृत पट्टे के अधीन दी गई हो अथवा एक वर्ष या उससे कम अवधि के लिए लिखित या मौखिक पट्टे के अधीन दी गई हो, जिसका उल्लेख छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 (बंगाल अधिनियम 6 सन् 1908) की धारा 43 में किया गया है।

(ख) कृषि या बागवानी प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त भूमि, जो किसी संपदा या अधिकार के अस्थायी पट्टाधारी के प्रत्यक्ष कब्जे में हो और जिसका वह स्वयं अपनी सामग्री से अथवा अपने सेवकों द्वारा अथवा नियोजित श्रमिकों द्वारा अथवा किराये की सामग्री के साथ स्वयं खेती करता हो, और

(ग) कृषि या बागवानी प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त वे भूमि, जो किसी

> विद्यमान बंधक का विषय हों और जिनके मोचन पर मध्यस्थ को उनका 'खास' कब्जा पुनः प्राप्त करने का अधिकार हो; धारा 7 क तथा 7 ख के प्रावधानों के अधीन, ऐसी भूमि को राज्य द्वारा ऐसे मध्यस्थ के साथ बसाई हुई मानी जाएगी और वह उनका कब्जा बनाए रखने तथा राज्य के अधीन 'रैयत' के रूप में उन्हें धारण करने का अधिकारी होगा, तथा ऐसी भूमि के संबंध में उसे अधिभोग अधिकार प्राप्त होंगे, बशर्ते कि वह ऐसा उचित एवं न्यायसंगत किराया अदा करे जैसा कि समाहर्ता द्वारा विधिवत् निर्धारित किया जाए।"

यह धारा केवल यह उपबंधित करती है कि भूमि को राज्य द्वारा ऐसे मध्यस्थ के साथ बसाई हुई मानी जाएगी और वह उसका कब्जा बनाए रखने तथा राज्य के अधीन रैयत के रूप में उसे धारण करने का अधिकारी होगा, तथा ऐसी भूमि के संबंध में उसे अधिभोग अधिकार प्राप्त होंगे, बशर्ते कि वह उचित एवं न्यायसंगत किराया अदा करे। किन्तु यदि मध्यस्थ अन्य सहभाजकों की ओर से प्रतिनिधिक क्षमता में कब्जे में था, तो एक आवश्यक परिणाम के रूप में भूमि उन सभी व्यक्तियों के साथ बसाई हुई मानी जाएगी जिनकी ओर से वह विशेष मध्यस्थ खास कब्जे में था। परिणामस्वरूप, यदि भैया रुद्र प्रताप देव का कब्जा अन्य सहभाजकों की ओर से था, तो भूमि उन सभी सहभाजकों के साथ बसाई हुई मानी जाएगी और वे सभी रैयत बन जाएंगे।

यह किसी का भी वाद नहीं है कि वादी और प्रतिवादी के बीच कोई विभाजन हुआ है। परिवार की संयुक्त स्थिति बनी रही और इसलिए भैया रुद्र प्रताप देव की मृत्यु के पश्चात उनका हित अन्य सहभाजकों पर भी हस्तांतरित हुआ।

इसके पश्चात अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी ने भूमि भरण-पोषण विलेख के आधार पर प्राप्त की, जो प्रारंभ से ही शून्य था, और अतः

प्रतिवादी की स्थिति अतिक्रमणकर्ता की थी तथा वह वादी के वाद पर बेदखली के लिए उत्तरदायी था। अपीलकर्ता के अनुसार भरण-पोषण विलेख दो कारणों से शून्य था: प्रथम, क्योंकि उक्त विलेख के लिए छोटानागपुर भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1876 की धारा 12क के अनुसार आयुक्त की स्वीकृति प्राप्त नहीं की गई थी; द्वितीय, क्योंकि उक्त विलेख न तो मुद्रांकित था और न ही पंजीकृत। प्रथम कारण को समझने के लिए धारा 12क का, जहाँ तक इस वाद के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है, अवलोकन करना आवश्यक है:

> "12-क (1) जब धारा 12 की प्रथम या तृतीय उपधारा में वर्णित परिस्थितियों के अंतर्गत संपत्ति का कब्जा और उपभोग उस व्यक्ति को पुनः स्थापित किया जाता है, जो धारा 2 के अधीन आवेदन किए जाने के समय उस संपत्ति का धारक था, तब ऐसा व्यक्ति आयुक्त की पूर्व स्वीकृति के बिना सक्षम नहीं होगा,
>
> (क) ऐसी संपत्ति, या उसके किसी भाग का, किसी भी प्रकार से अंतरण करने के लिए, अथवा
>
> (ख)उस पर अपने जीवनकाल से परे प्रभावी रहने वाला कोई भी भार सृजित करने के लिए।
>
> (2) ————
>
> (3) उपधारा (1) के उल्लंघन में किया गया या करने का प्रयत्न किया गया प्रत्येक अंतरण तथा भार शून्य होगा।"

धारा 12क तभी लागू होगी जब संपत्ति का कब्जा और उपभोग धारा 12 की प्रथम या तृतीय उपधारा में वर्णित परिस्थितियों के अंतर्गत पुनः स्थापित किया गया हो। यह सिद्ध करना वादी का दायित्व था कि धारा 12 में निहित शर्तें पूर्ण हुई थीं, जिसे वह सिद्ध करने में असफल रहा।

द्वितीय कारण के संबंध में, तर्क भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 को धारा 49 के साथ पढ़कर आधारित है। पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 उन दस्तावेजों

का उल्लेख करती है जिनका पंजीकरण आवश्यक है। पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 यह उपबंधित करती है कि धारा 17 अथवा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के किसी भी प्रावधान के अंतर्गत पंजीकरण योग्य कोई दस्तावेज, जब तक पंजीकृत न हो, (क) उसमें निहित किसी अचल संपत्ति को प्रभावित नहीं करेगा, (ख) ..., (ग) ऐसी संपत्ति को प्रभावित करने वाले किसी लेन-देन या ऐसा अधिकार प्रदान करने के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा। भरण-पोषण विलेख भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के अर्थ में ऐसा दस्तावेज है जिसके लिए पंजीकरण आवश्यक है, और चूंकि उक्त दस्तावेज का पंजीकरण नहीं हुआ, अतः इसे ऐसी संपत्ति को प्रभावित करने वाले किसी लेन-देन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। तथापि, धारा 49 का उपबंध यह अनुमति देता है कि ऐसे अपंजीकृत दस्तावेज का उपयोग किसी ऐसे सहायक लेन-देन के साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है, जिसके लिए पंजीकृत लिखत द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया जाना आवश्यक नहीं है। इस विधिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में, भरण-पोषण विलेख को कब्जे के स्वरूप के निर्धारण हेतु सहायक उद्देश्य के लिए देखा जा सकता है।

स्वीकार्यतः प्रतिवादी एक संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य था। अविभाज्य संपदा में भी वह भरण-पोषण का अधिकारी था और विवादित भूमि निस्संदेह अविभाज्य संपदा के धारक द्वारा उसे प्रदान की गई थी। अतः उसका कब्जा अतिक्रमणकर्ता का कब्जा नहीं माना जा सकता और हमारे मत में उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को अतिक्रमणकर्ता ठहराने में त्रुटि की है।

यह हमें अपीलकर्ताओं की ओर से उठाए गए अंतिम, किन्तु कम महत्वपूर्ण नहीं, तर्क की ओर ले जाता है। श्री एस. सी. मिश्रा के अनुसार, मूल वादी अविभाज्य संपदा का धारक होने के कारण, उसकी संपदा केवल उसके उत्तराधिकारियों को ही प्राप्त होगी और परिवार के अन्य सदस्यों को उत्तरजीविता के आधार पर प्राप्त नहीं होगी। अपने इस तर्क के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित वादों पर अवलंबित किया: *राजा वेलुगोटी कुमारा*

कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य बनाम राजा वेलुगोटी सर्वज्ञ कुमारा कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य, [1970] 3 एस.सी.आर. 88; राजा राम राव बनाम पिट्टापुर के राजा, [1918] एल.आर. 45 आई.ए. 148; हरगोविंद सिंह बनाम एटा के समाहर्ता, ए.आई.आर. 1937 इलाहाबाद 377; तथा राजा राव वेंकटा सूर्य महिपति राम कृष्ण राव बहादुर बनाम कोर्ट ऑफ वार्ड्स, [1899] एल.आर. 26 आई.ए. 83।

राजा वेलुगोटी कुमारा कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य बनाम राजा वेलुगोटी सर्वज्ञ कुमारा कृष्ण याचेंद्र वरु एवं अन्य (उपरोक्त), जो इस संदर्भ में प्रथम और प्रमुख रूप से अवलंबित वाद है, उसमें वादी की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि अविभाज्य संपदा की संपत्ति सहभोजिता के रूप में संयुक्त परिवार की संपत्ति के रूप में धारण की गई थी और जब उसका अविभाज्यता का स्वरूप समाप्त हो गया, तब वह सदस्यों के मध्य विभाज्य हो गई। दूसरे शब्दों में यह तर्क था कि कनिष्ठ सदस्यों का अविभाज्य संपदा में वर्तमान हित था और जैसे ही अविभाज्यता समाप्त हुई, वे संपदा में हिस्सेदारी के अधिकारी हो गए। इस तर्क को अस्वीकार कर दिया गया और इस न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि:

> "हमारे मत में इस तर्क के लिए कोई औचित्य नहीं है। अविभाज्य संपदा के स्वरूप और उससे संबंधित विधिक लक्षणों के संबंध में विधि अब सुव्यवस्थित रूप से स्थापित है। अविभाज्यता मूलतः प्रथा की उपज है। प्राचीन अविभाज्य संयुक्त परिवार संपदा के मामले में संयुक्त परिवार के कनिष्ठ सदस्यों को जन्म से संपत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता और इसलिए संपदा के अविभाज्य होने के स्वरूप को देखते हुए उन्हें विभाजन का कोई अधिकार नहीं होता। द्वितीयतः, उन्हें परिवार के मुखिया द्वारा, चाहे आवश्यकता के लिए हो या अन्यथा, संपत्ति के अंतरण को रोकने का भी कोई अधिकार नहीं होता।"

तथापि, इस न्यायालय ने विधिक स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में और अधिक स्पष्ट किया:

> "इस सीमा तक संयुक्त परिवार की संपत्ति पर लागू सामान्य मिताक्षरा विधि को प्रथा द्वारा संशोधित किया गया है, और एक अविभाज्य संपदा, यद्यपि वह पैतृक संयुक्त परिवार संपदा हो सकती है, उस सीमा तक स्व-अर्जित एवं पृथक संपत्ति के गुणों से युक्त हो जाती है। संयुक्त परिवार की अविभाज्य संपदा में संयुक्त परिवार की संपत्ति का जो एकमात्र लक्षण अभी भी संलग्न रहता है, वह उत्तरजीविता का अधिकार है, जो कि अविभाज्यता की प्रथा के प्रतिकूल नहीं है। संपत्ति के अवतरण के प्रयोजन से संपत्ति को संयुक्त परिवार की संपत्ति माना जाता है और संयुक्त परिवार का कोई सदस्य जन्म से जो एकमात्र अधिकार प्राप्त करता है, वह उत्तरजीविता के आधार पर संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार है, किन्तु उसे स्वयं संपत्ति में कोई हित प्राप्त नहीं होता। उत्तरजीविता का यह अधिकार तब तक बना रहता है जब तक संयुक्त परिवार अस्तित्व में रहता है, और इस अधिकार को समाप्त करने का एकमात्र तरीका यह सिद्ध करना है कि संपदा उत्तराधिकार के प्रयोजन से संयुक्त परिवार की संपत्ति रहना बंद हो गई, जो परिवार के कनिष्ठ सदस्यों की ओर से व्यक्त या निहित ऐसे अभिप्राय को सिद्ध कर कि उन्होंने संपदा के उत्तराधिकार के अधिकार का परित्याग या समर्पण कर दिया है।"

उपर्युक्त उद्धृत टिप्पणियाँ स्वयंस्पष्ट हैं और अपीलकर्ता के तर्क का समर्थन नहीं करतीं, बल्कि वे प्रतिवादी-उत्तरदाता के पक्ष का समर्थन करती हैं।

राजा राम राव बनाम पिट्टापुर के राजा (उपरोक्त) में यह अभिनिर्धारित किया गया था:

> "अविभाज्य जमींदारी प्रथा की उपज है; इसकी मूल विशेषता यह है कि उसमें कोई सहभोजिता अस्तित्व में नहीं होती। अतः, प्रथा तथा धारक के साथ संबंध के अतिरिक्त, परिवार के कनिष्ठ सदस्यों को उससे भरण-पोषण का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता।"

हरगोविंद सिंह बनाम एटा के समाहर्ता (उपरोक्त) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने *बैजनाथ प्रसाद सिंह बनाम तेज बली सिंह, 43 इलाहाबाद 228 प्रिवी काउंसिल*, में प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई निम्नलिखित टिप्पणियों को अनुमोदन सहित उद्धृत किया:

> "... जमींदारी संयुक्त परिवार की पैतृक संपत्ति होने के कारण, यद्यपि वह अविभाज्य है, तथापि उत्तराधिकारी का निर्धारण मिताक्षरा विधि के सामान्य नियम के अनुसार किया जाएगा, और यह कि प्रतिवादी, जो संयुक्त परिवार में ज्येष्ठ शाखा का ज्येष्ठ सदस्य होने के कारण परिवार का मुखिया होता, वही व्यक्ति इस अविभाज्य राज्य में गद्दी पर आसीन होने के लिए अभिहित किया गया है।"

राजा राव वेंकटा सूर्य महिपति राम कृष्ण राव बहादुर बनाम कोर्ट ऑफ वार्ड्स (उपरोक्त) में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मात्र अविभाज्यता के कारण कोई जमींदारी वसीयत द्वारा या अन्यथा अंतरणीय नहीं हो जाती, और जब तक जमींदारी से संबंधित किसी विशेष पारिवारिक प्रथा या भू-अधिकार की ऐसी शर्त का प्रमाण न हो जो ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हो, तब तक उसे अविनिमेय नहीं माना जा सकता।

तथापि, यह प्रश्न हमें अधिक समय तक व्यस्त रखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस न्यायालय को इस बिंदु पर विस्तृत रूप से विचार करने का अवसर *मिर्जा राजा श्री पुषवाठी विजयराम गजपति राज मन्ने सुल्तान बहादुर एवं अन्य बनाम श्री पुषवाठी विश्वेश्वर गजपति राज एवं अन्य [1964] 2 एस.सी.आर. 403* में प्राप्त हो चुका है। उक्त बिंदु पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया:

"प्रिवी काउंसिल के निर्णय *शिबा प्रसाद सिंह बनाम रानी प्रयाग कुमारी देवी [1932] एल.आर. 59 आई.ए. 331* के पश्चात यह सुव्यवस्थित रूप से स्थापित माना जाना चाहिए कि जो संपदा प्रथा के कारण अविभाज्य है, उसे उस संपदा के धारक की पृथक या विशिष्ट संपत्ति नहीं कहा जा सकता। यदि धारक को वह संपदा पैतृक संपदा के रूप में प्राप्त हुई है और उसने उसे ज्येष्ठाधिकार के आधार पर प्राप्त किया है, तो वह अविभाजित हिंदू परिवार की संयुक्त संपदा का एक भाग होगी। बोर्ड के लिए सर दिनशॉ मुल्ला द्वारा प्रदत्त प्रकाशमान निर्णय में, इस विषय से संबंधित पूर्ववर्ती प्रासंगिक निर्णयों का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया गया है और विधि की स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। साधारण संयुक्त परिवार की संपत्ति के मामले में, परिवार के सदस्य चार अधिकारों का दावा कर सकते हैं: (1) विभाजन का अधिकार; (2) परिवार के मुखिया द्वारा आवश्यकता के अतिरिक्त किए गए अंतरण को रोकने का अधिकार; (3) भरण-पोषण का अधिकार; और (4) उत्तरजीविता का अधिकार। यह स्पष्ट है कि संपत्ति के अविभाज्य स्वरूप के कारण इन अधिकारों में से प्रथम अधिकार का अस्तित्व नहीं हो सकता। द्वितीय अधिकार भी अविभाज्यता की प्रथा के प्रतिकूल है, जैसा कि प्रिवी काउंसिल ने *रानी सरताज कुँवरी बनाम देवराज कुँवरी [1888] एल.आर. 15 आई.ए. 51* तथा *प्रथम पिट्टापुर वाद—वेंकटा सूर्य बनाम कोर्ट ऑफ वार्ड्स, [1898] एल.आर. 26 आई.ए. 83* में अभिनिर्धारित किया था। यहाँ तक कि भरण-पोषण का अधिकार भी, एक विधिक अधिकार के रूप में, *द्वितीय पिट्टापुर वाद—राम राव बनाम पिट्टापुर के राजा, [1918] एल.आर. 45 आई.ए.* में प्रतिपादित अनुसार लागू नहीं होता। तथापि, चतुर्थ अधिकार अर्थात उत्तरजीविता का अधिकार

बना रहता है, और इसी अधिकार के संदर्भ में, यद्यपि संपत्ति अविभाज्य है, तथापि विधि की दृष्टि में उसे संयुक्त परिवार की संपत्ति माना जाता है। अविभाजित परिवार के वे सदस्य जो ऐसी अविभाज्य संपदा के स्वामी हैं, उनके द्वारा दावा किया जाने वाला उत्तरजीविता का अधिकार मात्र उत्तराधिकार की अपेक्षा से भिन्न है। *उत्तराधिकार की आशा* के विपरीत, उत्तरजीविता का अधिकार त्यागा या समर्पित किया जा सकता है।"

"यह भी *शिबा प्रसाद सिंह के वाद, [1932] एल.आर. 59 आई.ए. 331,* के निर्णय से निष्पन्न होता है कि जब तक किसी विधि या प्रथा द्वारा अधिकार को अपवर्जित न किया गया हो, प्रथागत अविभाज्य संपदा का धारक अपने अभिप्राय की घोषणा द्वारा अपनी स्व-अर्जित अचल संपत्ति को उस संपदा में सम्मिलित कर सकता है और तत्पश्चात वह संपत्ति उस संपदा में समाविष्ट हो जाती है तथा उसके समस्त गुणों से युक्त हो जाती है, जिनमें ज्येष्ठाधिकार द्वारा अवतरण की प्रथा भी सम्मिलित है। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसे मामलों में सम्मिलन का प्रभाव स्व-अर्जित संपत्ति को संयुक्त परिवार की संपत्ति के साथ मिश्रित करने के प्रभाव के विपरीत होता है। बाद की श्रेणी के मामलों में, जहाँ कोई व्यक्ति अपनी पृथक संपत्ति को उस संयुक्त परिवार की संपत्ति के साथ मिला देता है जिसका वह सहदायिकी है, वहाँ वह पृथक संपत्ति अपना पृथक स्वरूप खो देती है और संयुक्त परिवार की संपत्ति में विलीन हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उस संपत्ति का अवतरण उत्तरजीविता द्वारा शासित होता है, न कि उत्तराधिकार द्वारा। इसके विपरीत, यदि अविभाज्य संपदा का धारक संपत्ति अर्जित कर उसे उस अविभाज्य संपदा में सम्मिलित कर देता है, तो वह उसे उस अविभाज्य संपदा का भाग बना देता है, जिसके परिणामस्वरूप वह संपत्ति विभाज्य

रहना समाप्त हो जाती है और अविभाज्य बन जाती है।"

प्रिवी काउंसिल के *रानी सरताज कुँवरी बनाम देवराज कुँवरी* (उपरोक्त) वाद में निर्णय से पूर्व यह सदैव माना जाता था कि पैतृक अविभाज्य संपदा का धारक उक्त संपदा का अपने जीवनकाल से परे इस प्रकार अंतरण या बंधक नहीं कर सकता जिससे सहभाजकों पर बाध्यता उत्पन्न हो, सिवाय उन प्रयोजनों के जो परिवार के हित में हों और केवल उसके व्यक्तिगत हित के लिए न हों। तथापि, वर्ष 1888 में प्रिवी काउंसिल द्वारा *रानी सरताज कुँवरी के वाद* (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय से इस दृष्टिकोण को विचलित कर दिया गया। उस वाद में संपदा के धारक ने अपनी कनिष्ठ पत्नी को अपनी संपदा के 17 ग्राम उपहार स्वरूप प्रदान किए थे और इस उपहार की वैधता को उसके पुत्र द्वारा चुनौती दी गई थी। पुत्र का उक्त प्रतिवाद, तथापि, असफल रहा क्योंकि प्रिवी काउंसिल ने यह अभिमत व्यक्त किया कि "यदि, जैसा कि उनके लॉर्डशिप्स का मत है, मिताक्षरा विधि लागू होने की स्थिति में और जहाँ ज्येष्ठाधिकार की प्रथा विद्यमान है, ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता के साथ संपदा में सह-भागी नहीं बनता, तो संपदा की अनालंघनीयता प्रथा पर निर्भर करती है, जिसका प्रमाण होना चाहिए, अथवा कुछ मामलों में वह भू-अधिकार की प्रकृति पर भी निर्भर कर सकती है।" इस निर्णय की पुनः पुष्टि प्रिवी काउंसिल द्वारा *प्रथम पिट्टापुर वाद* (उपरोक्त) में की गई। इन निर्णयों के परिणामस्वरूप यह स्थापित माना जाना चाहिए कि अविभाज्य संपदा का धारक, यद्यपि परिवार अविभाजित हो, संपदा का अंतरण जीवित अवस्था में उपहार द्वारा अथवा वसीयत द्वारा कर सकता है; इस अधिकार पर एकमात्र सीमा ऐसी पारिवारिक प्रथा से उत्पन्न होगी जो इसके विपरीत हो या ऐसी भू-अधिकार की शर्त से, जिसका वही प्रभाव हो।

चिन्नाथायल उर्फ वीरलक्ष्मी बनाम कुलसेकर पांडिया नायकर एवं अन्य, [1952] एस.सी.आर. 241 में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह सिद्ध करने के लिए कि कोई अविभाज्य संपदा उत्तराधिकार के प्रयोजन से संयुक्त परिवार की संपत्ति रहना बंद हो गई है, यह आवश्यक है कि परिवार के कनिष्ठ सदस्यों की ओर से, व्यक्त या निहित

रूप में, संपदा के उत्तराधिकार के अपने अवसर का परित्याग करने का अभिप्राय सिद्ध किया जाए। प्रत्येक मामले में वादी पर यह दायित्व है कि वह ऐसे संतोषजनक आधार प्रस्तुत करे जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि संपदा में प्रतिवादी की शाखा का संयुक्त स्वामित्व समाप्त हो गया था, जिससे वह अंतिम धारक की शाखा की पृथक संपत्ति बन गई। लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या तथ्यों से यह स्पष्ट अभिप्राय प्रकट होता है कि अविभाज्य संपदा में किसी हित का परित्याग या समर्पण किया गया है, अथवा उत्तराधिकार के अधिकार का परित्याग किया गया है, तथा जमींदारी पर पृथक संपत्ति का स्वरूप आरोपित करने का आशय था। *पुषवाठी विजयराम गजपति राज मन्ने के वाद* (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने इसी विधिक स्थिति की पुनः पुष्टि की।

उपर्युक्त विचार-विमर्श के आलोक में यह अपील असफल होनी चाहिए।

यह हमें प्रतिवादी द्वारा दायर अन्य अपील की ओर ले जाता है। इस मामले में प्रतिवादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलकर्ता का कब्जा अतिक्रमणकर्ता के रूप में नहीं था, बल्कि वह अविभाज्य संपदा के धारक द्वारा प्रदत्त भरण-पोषण अनुदान के अधीन भरण-पोषण धारक के रूप में था। अतः उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-अपीलकर्ता के विरुद्ध कब्जे तथा मध्यवर्ती लाभ का न्यायादेश पारित करना विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। आगे यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि नागरुंतारी संपदा एक विभाज्य संपदा थी।

प्रथम तर्क के संबंध में, यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी सह-भागी के लिए संयुक्त संपत्ति के कब्जे में बने रहना अनुमेय है और ऐसी स्थिति में वादी के लिए उपयुक्त उपाय विभाजन हेतु वाद दायर करना है, जिसमें पक्षकारों के साम्य का समायोजन किया जा सके। दूसरी ओर, वादी-उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी का कब्जा केवल अतिक्रमणकर्ता के रूप में था। अपने इस तर्क के समर्थन में उन्होंने *कलेक्टर ऑफ बंबई बनाम बंबई नगर निगम एवं अन्य, ए.आई.आर. 1951 सर्वोच्च न्यायालय 469* के वाद पर अवलंबित किया। बहुमत ने यह अभिमत व्यक्त किया कि:

> "निगम तथा उसके स्वत्वाधिकार के पूर्वाधिकारी की स्थिति ऐसे व्यक्ति की थी जिसके पास कोई वैध स्वत्व नहीं था, किन्तु वह भूमि पर एक अवैध अनुदान के अधीन, जो स्थायी रूप से तथा किराया-मुक्त रूप में बाजार के प्रयोजन हेतु प्रदान किया गया था, कब्जा बनाए हुए था। ऐसा कब्जा, जो किसी विधिक स्वत्व से संबद्ध नहीं था, प्रथम दृष्टया भूमि के स्वामी के रूप में सरकार के विधिक स्वत्व के प्रतिकूल था, उस समय से ही जब निगम के पूर्वाधिकारी ने उक्त अवैध अनुदान के अधीन भूमि का कब्जा ग्रहण किया। यह कब्जा 70 वर्षों से अधिक अवधि तक खुले रूप में, अधिकार के रूप में तथा निरंतर बना रहा, और इस प्रकार निगम ने उस पर सीमित स्वत्व अर्जित कर लिया तथा उसका पूर्वाधिकारी इस समस्त अवधि में अधिकार प्राप्त करता रहा, अर्थात् भूमि को स्थायी रूप से, किराया-मुक्त, किन्तु केवल बाजार के प्रयोजन हेतु धारण करने का अधिकार, जैसा कि 1865 के सरकारी संकल्प में निर्दिष्ट है।"

प्रस्तुत वाद में प्रतिवादी, संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य होने के कारण, अविभाज्य संपदा के धारक से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकारी था। अविभाज्य संपदा के धारक ने प्रतिवादी के पक्ष में एक भरण-पोषण विलेख निष्पादित किया। यदि विवादित दस्तावेज पंजीकरण या मुद्रांकन के अभाव में अवैध था, तब भी उसे सहायक उद्देश्य के लिए देखा जा सकता है, ताकि प्रतिवादी-अपीलकर्ता के कब्जे के स्वरूप का निर्धारण किया जा सके। इस प्रकार, प्रस्तुत वाद की परिस्थितियों में, उपर्युक्त उद्धृत वाद वादी-उत्तरदाता के लिए विशेष सहायक नहीं है। उस वाद में स्वत्व का एकमात्र आधार ही अवैध था। वादपत्र के अवलोकन से भी यह स्पष्ट होता है कि वादी ने प्रतिवादी को भरण-पोषण के रूप में कुछ अनुदान प्रदान किया था और भरण-पोषण का एक औपचारिक विलेख निष्पादित किया गया था। उक्त दस्तावेज के निष्पादन से वादी ने इनकार नहीं किया है। उसका केवल यह कहना है

कि ग्राम सिगसिगी उस विलेख में सम्मिलित नहीं था।

हम प्रतिवादी-अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्क में पर्याप्त बल पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के विरुद्ध कब्जे तथा मध्यवर्ती लाभ के लिए न्यायादेश पारित करने में त्रुटि की है। इस मामले में वादी के लिए उचित उपाय यह था कि वह समस्त संपत्तियों के संबंध में एक नियमित विभाजन वाद दायर करे, न कि केवल एक ग्राम के भूखण्डों के कब्जे तथा मध्यवर्ती लाभ के लिए वाद दायर करे।

द्वितीय तर्क, कि विवादित संपदा एक विभाज्य संपदा थी, केवल अस्वीकार किए जाने हेतु ही प्रस्तुत किया गया है। अभिलेख पर उपलब्ध प्रबल साक्ष्य किसी भी प्रकार के संदेह के लिए स्थान नहीं छोड़ते कि मूल वादी की वर्ष 1957 में मृत्यु तक विवादित संपदा एक अविभाज्य संपदा थी।

परिणामस्वरूप, वादी द्वारा दायर प्रथम अपील संख्या 209 सन् 1970 निरस्त की जाती है, जबकि प्रतिवादी द्वारा दायर अन्य अपील संख्या 2280 सन् 1970 स्वीकार की जाती है, और उच्च न्यायालय द्वारा पारित न्यायादेश निरस्त किया जाता है तथा विचारण न्यायालय का न्यायादेश, जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी, पुनर्स्थापित किया जाता है।

प्रकरण की परिस्थितियों में हम यह निर्देश देते हैं कि पक्षकार अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेंगे।

वी.डी.के.

दीवानी अपील संख्या 209/1970 निरस्त की गई।

दीवानी अपील संख्या 2280/1970 स्वीकृत की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक,

कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।